अध्याय - एकादश

विदुर

सरसी छंद

संजय के प्रस्थित होने पर, विकल अंबिका[1] जात ।
लगे सोचने चिंता में ही, क्या बीतेगी रात ॥
आये संजय पांडव से मिल, पर न बताई बात ।
सभा मध्य ही बतलाएंगे, अत: प्रतीक्ष्य[2] प्रभात ॥1॥

अत: विदुर जी को बुलवाया, करने चित्त प्रशांत ।
एकाकी चिंतन चिरकालिक, कर देता उद्भ्रांत[3] ॥
अचिरागत[4] कृत नमन बिठाए, सादर गुणनिधि पास ।
मुझे विदुर तव धर्म नीति पर, दर्शन पर विश्वास ॥2॥

विचिकित्सा[5] जब भी आती है, मेरे मानस बीच ।
तुम्हीं तमोहर[6] बन जाते हो, हृदय विभासे सींच ॥
आज पुन: तुमको बुलवाया, दुष्चिंता हरणार्थ ।
बोलेंगे संजय माध्यम से, कल वे अग्रज पार्थ ॥3॥

क्या होगा संदेश और क्या, होगा मम कर्तव्य ।
शंका वारण[7] करो शीलनिधि, अनुशय[8] मम हर्तव्य ।
क्षिप्त अनिर्णय अर्णव[9] मैं हूं ,हृदय विकल्पाकीर्ण ।
करो समुध्दृत नयवचनों से,संशय घटा विषीर्ण ॥4॥

रात्रि जागरण करते कामी, तस्कर हृतसर्वस्व ।
सबलार्जित विरोध निर्बल भी, सकल जानता विष्व ॥
नहीं दोष संभाव्य आपमें, पर परधन का लोभ ।
उठा रहा है शायद नृप तव, अंतर में विक्षोभ ॥5॥

रूपमाला छंद

मात्र जो पदचाप से ले, मनुज को पहचान ।
निकट आगत वंशक्षय से, क्यों रहा अनजान ॥
श्रोत्र में मनशक्ति भर कर, पटु विषय का ज्ञान ।
बालपन का श्लाघ्यगुण[10] वह, खो चुके बलवान ॥6॥

1	धृतराष्ट	6	सूर्य
2	प्रतीक्षा करने योग्य	7	निवारण, दूर करना
3	भ्रमित, विकल	8	परिताप, दुःख
4	शीघ्र आए हुए	9	समुद्र
5	संकल्प, विकल्प	10	प्रशंसनीय

आज सुनना चाहते जो, मानते श्रोतव्य[1] ।
हर समद नृप श्रोत्र में यह, नीति का भवितव्य[2] ॥
जो न कर पाया करे मम, पुत्र वे सब कार्य।
भाव यह करता रहा तव, सूनू को अनिवार्य्य[3] ॥7॥

स्पर्शज्ञान पटुत्व से तुम, जान सकते आर्य ।
भावना कौन्तेय की सुचि, धीरता औदार्य ॥
चरण जब छूते तुम्हारे, पूज्य मन से मान ।
क्यों न समता धार पाते, तात तज कर मान ॥8॥

नियति ने तम में डुबाया, तुम्हारा संसार ।
कुरूतिमिरमज्जन[4] नहीं है, तात तव अधिकार ॥
तिमिरदुखवेत्ता जगत में, कौन तुम सा अन्य ।
अत: तुमको नहीं हैं नय, के वचन अवमन्य[5] ॥9॥

दिया उनको अनुर्वर वन, खण्ड खाण्डवप्रस्थ ।
नहीं पर नैराष्य से थे, पाण्डु सुत संत्रस्त ॥
इन्द्रपुर सम बस गया जब, रम्य इन्द्रप्रस्थ ।
क्यों लगा उष्णीष[6] कुरूपति, को हुआ सा स्त्रस्त[7] ॥10॥

देख गरिमा भव्यता नय, धाम[8] से उद्भूत ।
डस गई तुमको असूया, राजसूय प्रसूत ॥
देख कर निज बन्धु का भी, सुकर्मज उत्कर्ष ।
नहीं अनुभव गम्य लघु उर, को अनाविल[9] हर्ष ॥11॥

आपको श्रोतव्य शमदा[10], मात्र क्षण को नीति ।
स्वाभिमत[11] पथगमन ही तव, चित्त की है रीति ॥
मात्र परिचर्चा विषय हे, नृप नहीं है धर्म ।
यत्नत: अनुपालना ही, श्रेय का है मर्म ॥12॥

1 सुनने योग्य
2 भविष्य
3 न रोकने योग्य
4 अंधकार में डुबाना
5. न मानने योग्य
6. राजमुकुट
7. खिसका हुआ
8. तेज
9. स्वच्छ ,निर्मल
10. शान्ति दायक
11. स्वयं को भाने वाला

सरसी छंद

नहीं अप्राप्य अभीप्सित जिनको, नहीं नष्ट हित शोक ।
नहीं आपदाएं भीषण भी पातीं प्रज्ञा रोक ॥
होता हृष्ट न आदर पाकर, नहीं अनादर रूष्ट ।
यथा शक्ति कर्तव्य पूर्ण कर, रहता मन में तुष्ट ॥13॥

वेदानुगा[1] मनीषा[2] जिसकी, प्रज्ञानुग[3] हैं शास्त्र ।
वही सुपण्डित जिसे प्राप्त है, एक विवेक महास्त्र ॥
जो अमित्र को मित्र बनाता, सुहृदों से कर द्वेष ।
अकृतोद्यम[4] असफल उद्यम वह, रहे अशांत विशेष ॥14॥

अविदितनिजबल[5] दुर्लभतर को, धर्म अर्थ से हीन ।
पाना चाहे अकृतोद्यम ही, वही मूढ़ है दीन ॥
जो निर्णय लेता है होता, नरपति वही सपाप ।
भोक्ता लाभांवित होते हैं, कर्ता दोषी आप ॥15॥

श्रेय शांति परितृप्ति और सुख, देने वाले चार ।
धर्म क्षमा विद्या अविहिंसा, यही शास्त्र का सार ॥
राजमंत्रणा हेतु नहीं है, अधिकारी ये चार ।
दीर्घ सूत्रता[6] युक्त अल्पधी[7], सत्वर ईडाकार[8] ॥16॥

ईष्या और घृणा से पीड़ित, शंकित और सरोष ।
पराश्रयी आजीवन रहते, दुखी कहां परितोष ॥
दैत्यराज ने पुत्र विरोचन, को यह शुभ उपदेश ।
कभी दिया था किंतु आज भी, सार्थक परम नरेश ॥17॥

कामक्रोधत्यागी[9] सुपात्र का, दाता बहु श्रुतवान ।
सत्वरकृतकर्तव्य नृपति ही, बनता तात महान ॥
लोकप्रतीतिजननक्षम[10] देता, ज्ञातदोष को दण्ड ।
समुचितक्षमाशील होता नृप, श्रीयुत अचिर अचण्ड[11] ॥18॥

1 वेद का अनुसरण करने वाली	6 कार्य को टालने वाला	11 सौम्य
2 बुद्धि	7 मन्द बुद्धि	
3 बुद्धि का अनुसरण करने वाला	8 स्तुति करने वाला	
4 बिना पुरूषार्थ किए	9 शीघ्र करने योग्य करने वाला	
5 अपनी क्षमता से अनजान	10 जनता का विश्वास जगाने में सक्षम	

सावधान रिपु से रहता है, अकृत अबल अपमान ।
बैर बली से न कर समय पर, विक्रम करे महान ॥
व्यथित नहीं होता विपदा से, करता है उद्योग ।
सावधान उस नर तितिक्षु[1] का, ही बनता जययोग ॥19॥

करता कभी नहीं निज श्लाघा[2], उद्धतता से दूर ।
परम कुपित होकर भी कुवचन, नहीं बोलता शूर ॥
नहीं प्रशांत पुरातन विग्रह, को करता उद्दीप्पत ।
दुरित[3] ग्रस्त हो भी अकार्य को, करता कभी न दीप्त ॥20॥

देश काल आचार जानता, उत्तम अधम विवेक ।
उसकी सेवा को प्रस्तुत से, रहते नृपति अनेक ॥
मितभोजी मितषायी[4] दानी, सुहृद हेतु कृत त्याग ।
गुप्त मंत्र नृप से है करती, सिद्धि परम अनुराग ॥21॥

मिथ्योपाय ग्रहीत धराधन, के प्रति गत अनुराग ।
हो जाओ तुम नृप करो सुसंगत, दुरत अधिकार विभाग ॥
सदुपायों से नर के असफल, भी होते यदि कार्य ।
नहीं ग्लानि का अनुभव करते, महासत्व[5] वे आर्य ॥22॥

निष्चितविदितप्रयोजन होना, है पहला कर्तव्य ।
फिर परिणाम कृत्य का चिर तक, है राजन ध्यातव्य[6] ॥
तब उपाय करना विधेय है, रहे योजना गुप्त ।
आवश्यक है चयन व्यक्तियों ,का जो हों उपयुक्त ॥23॥

जनपद कोष दण्ड की मात्रा, से जो नृप अनजान ।
लब्ध राज्य भी खो देता है, जिसे न गुण पहचान ॥
निष्फल मन्यु[7] अनुग्रह भी हो, जिसका मात्र असार ।
वह न प्रजा का कान्त षण्ढ[8] ज्यों, रमणी को भर्तार ॥24॥

1 सहनशील	5 महामनस्वी, बलवान
2 प्रशंसा	6 मनन करने योग्य
3 कष्ट ,पाप	7 क्रोध
4 कम सोने वाला	8 नपुंसक

मन क्रम वचन प्रजा अनुरंजन, कर न सके जो भूप ।
त्रस्तभूत[1] को तजती जनता, ज्यों असार[2] हो कूप ॥
होकर भी अधिराज त्यागता, जो विमूढ़ सद्धर्म ।
उसकी भूमि संकुचित होती, अग्निस्था[3] ज्यों चर्म ॥25॥

गाय गंध से और वेद से, देखा करता विप्र ।
चक्षु दृष्टि से जन साधारण, चारेक्षण[4] नृप क्षिप्र ॥
धर्म सत्य से ज्ञान योग से, शुचिता से शुभ रूप ।
रक्षित होते सदाचार से, ही कुल हे कुरू भूप ॥26॥

असद्वृत्ति[5] का आभिजात्य[6] भी, मुझे नहीं है मान्य ।
अन्त्यज भी यदि सदाचारयुत, मानित वही वदान्य[7] ॥
मेरे मत में मनुजमात्र में, केवल शील प्रधान ।
धन जन जीवन में करते क्या, सार्थकता आधान[8] ॥27॥

वृत्तिभंगभयग्रस्त[9] अधम है, मध्य मरण भयभीत ।
अवमाननाभीत[10] उत्तम है, जिसका चरित पुनीत ॥
जिसने जीता आत्म सचिवजय, में क्षम वही नरेश ।
विजितप्रकृति[11] ही सकता है, रिपु समस्त नि:शेष ॥28॥

इंद्रियवशगामी को लगते, सार्थक घोर अनर्थ ।
सुख मानता निगूढ़[12] दुखों को, जीवन करता व्यर्त्थ ॥
असत् पुरूष का साथ वेदना, दायक होता सिध्द ।
तत्कृत किल्विष[13] से सज्जन भी, हो जाता अनुविद्ध[14] ॥29॥

होकर भी अदण्डय पाता है, कभी तीक्ष्णतर दण्ड ।
शुष्क आर्द्र का भेद न करती, जैसे वन्हि प्रचण्ड ॥
हिंसा ही कुपुरूष का बल है, राजा का बल दण्ड ।
सेवा स्त्रीबल और क्षमाबल, धारे गुणी अखण्ड ॥30॥

1 प्राणियों को त्रास देने वाला	8 रखना
2 जलहीन	9 जीविका भंग का भय
3 अग्नि पर स्थित	10 अपमान
4 गुप्तचर ही जिसके नेत्र हैं	11 राजपुरूषों को जीत लेने वाला
5 सदाचार विहीन	12 गुप्त, छिपा हुआ
6 उच्चकुलोत्पन्ना, कुलीनता	13 पाप
7 श्रेष्ठ वक्ता	14 संलग्न

देह विद्ध नालीक[1] कर्णि[2] या, नाराचादिक[3] बाण ।
सकते निकल नहीं वाणीषर, जब तक रहते प्राण ॥
वांछित पराभूति[4] जिस शठ की, उसका मति अपहार[5] ।
कर देते हैं देव मनुज वह, होता विकृतविचार ॥31॥

मति मालिन्य सदा सूचक है, अब क्षय है आसन्न ।
किंतु अनय उसको नय[6] लगता, हुआ विवेक विपन्न ॥
दक्षिण[7] दिशा प्रवृत्त भासती, मुझको कुरू संतान ।
अनय जाल अति निंद्य बुना है, छल का विषम वितान[8] ॥32॥

किंतु वही मति तव विवेक को, करती सी अभिभूत ।
क्यों प्रविष्ट हो रही आप में, करने बैर प्रसूत ॥
कुपथ पथिक कुरूपति क्यों बनते, नहीं अयष प्राप्तव्य ।
बनो पथज्ञ[9] पथ्य[10] के ज्ञाता बोधित हो गंतव्य ॥33॥

जरा दुराशा असूया, कोप काम यमचार ।
रूप धैर्य धर्माचरण, श्री ही जीवनहार ॥34॥

नीच पुरूष सेवाहरे, शील मनुज का तूर्ण ।
किन्तु एक अभिमान ही, सर्वहरणक्षमपूर्ण ॥35॥

यज्ञ अध्ययन दान तप, सत्य क्षमा अनुक्रोष[11] ।
नित अलोभ अष्टांगयुत, धर्मपंथ निर्दोष ॥36॥

मर्माघाती निर्दयी, और असूयावान ।
वैरभावयुत शठ सदा, कृतसज्जन अपमान ॥37॥

निज दुष्कर्मों से अचिर, पाते हैं बहुकष्ट ।
बल सत्ता से युक्त भी, होते निश्चित नष्ट ॥38॥

अनयार्जित[12] सम्पदा नहीं ढक, पाती नर के छिद्र ।
उसके ही आचार प्रमाणित, करते उसे दरिद्र ॥
पाता त्रिगण[13] मनुष्य त्रिगुणयुत, हो त्रिलोक में ख्यात ।
शूर मनीषी सेवापटु ही, सफल न बस अभिजात ॥39॥

1 वाणों के प्रकार	6 नीति	11 दया , करूणा
2 वाणों के प्रकार	7 यमराज की दिषा है	12 अनीति से प्राप्त
3 वाणों के प्रकार	8 चंदोवा	13 धर्म, अर्थ, काम
4 पराजय	9 मार्ग जानने वाला	
5 अपहरण	10 हितकर	

जिनके रहता साथ मनुज जिनसे करता व्यवहार ।
जिसकी सेवा में रहता है, वैसे ही आचार ॥
करने लगता अनजाने ही, मनग्राही है बिम्ब ।
जैसा बनने की वांछा है, बनता वह अबिलंब ॥40॥

जिसमें श्रद्धा नहीं स्वयं पर, भी करता संदेह ।
पर[1] से शंकित और मित्र से, भी अप्रकाशित ध्येय ॥
खो देता है मित्र सहायक, बंधु और निज शक्ति ।
कल्पित मनोजाल में उलझा, अधम कहाता व्यक्ति ॥41॥

दुर्जनबल से मति कौशल से, करके बहु पुरूषार्थ ।
अर्जित प्रभूतार्थ[2] प्रभुता भी, करते हैं पर व्यर्थ ॥
नहीं सदाचारी हो पाता, वह सत्पुरूष समान ।
जो कुलीनता मूल न मिलता, अत: उसे बहुमान[3] ॥42॥

वही महाकुलगण्य प्राप्त हैं ,जिसमें गुण ये सप्त ।
तप इंद्रिय संयम श्रुतिगायन, शुभ परिणय से तृप्त ॥
अविरत[4] अन्नदान जिसमें प्रिय, नर को शुभ आचार ।
अत: स्वत: होता हित उसका, निर्मल कृति प्रसार ॥43॥

अन्नुष्ठितमख[5] परिणयपांसुल[6], संतत[7] वेद निरस्त ।
त्यक्त धर्मपथ आप्त अधमता, शुभकुल होता अस्त ॥
गमनागमनषशील श्री होती, रक्षणीय है वृत्त[8] ॥
नहीं विगतधन क्षीण चरितच्युत, यश होता अनिवृत्त[9] ॥44॥

नहीं अभीप्सित लब्धि कराता, जग में हे नृप शोक ।
मति वपुकर्षण रिपुदलहर्षण, वाधितसुख निर्मोक[10] ॥
सुख दुख लाभ हानि जीवन लय, क्रमश: सबको प्राप्त ।
होते हैं अनिवार्य द्वंद्व ये, व्यथित न होता आप्त[11] ॥45॥

मैने जो अजातरिपु[12] के प्रति, किया असत् व्यवहार ।
उससे कुपित करेंगे वे मम, पुत्रों को संहार ॥
यही सोचता रहता निशदिन, मेरा मन उद्विग्न ।
मैंने स्वयं डाल ली है निज,शांति सौख्य में विघ्न ॥46॥

1 दूसरा शत्रु	2 बहुत धन	3 सम्मान	4 लगातार
5 यज्ञ न करने वाला	6 विषम विवाह से पतित	7 निरन्तर	8 आचरण
9 न लौटने वाला	10 मोक्ष	11 ज्ञानी	12 युधिष्ठिर

कैसे भय निर्मूल शांति का, किस विधि हो आस्वाद ।
कैसे कुल हो मेरा प्रमुदित, प्रशमित सकल विवाद ॥
बुद्धि भीतिहारी होती है, ध्रुवपद तप से प्राप्त ।
ज्ञान प्रसविणी[1] है गुरू सेवा, प्रषमज[2] योग उदात्त ॥47॥

जिनमें भेद और विग्रह हैं, क्या पा सकते शांति ।
रहते हैं उन्निद्र[3] नहीं हर, पाते हैं कटु क्लांति[4] ॥
अभिरामा[5] रामा[6] न भासती, रहता चिंतित चित्त ।
चारण यश उच्चारण करता, नहीं श्रवणयुग सिक्त ॥48॥

धर्माचरण विमुख हो जाते, प्राय: विग्रहवान[7] ॥
विरहितगौरव उन्हें अरूचिकर, होता प्रषमविधान ॥
द्विज अबला निज ज्ञाति और गो, पर बल का उपयोग ।
जो करते हैं अचिर पतित हो, सहते प्राण वियोग ॥49॥

सभा मध्य यह द्यूत प्रवंचन[8], रोको मम अनुरोध ।
नहीं मानकर नृप स्वभाग्य से, ही कर लिया विरोध ॥
क्रूरोपायोपात्त[9] इंदिरा[10], अस्थिरता क्षययुक्त ।
शुभ अर्जन अनुरागवती हो, वह होती चिरभुक्त ॥50॥

रूपमाला छंद

नहीं कह सकते निरर्थक, हो चले सुविचार ।
किंतु यदि बनते नहीं, संकल्प पटु आचार ॥
तो गहन शास्त्रार्थ भी है, निपट बुद्धि विनोद ।
अभ्युदय करता न होता, क्लेष का अपनोद[11] ॥51॥

आपकी है प्राप्त राजन, इस अनुज को प्रीति ।
मुदित हूं मम मनीषा पर, आपकी सुप्रतीति[12] ॥
किंतु है यह प्रार्थना जब, हो विषय निर्णीत ।
आपका आदेश हो द्रुत, पालना[13] परिणीत[14] ॥52॥

तनुज कृत भी धर्म विप्लव[15], जो न सहता भूप ।
दण्ड देता सत्यषोधी, धर्मनय अनुरूप ॥
वही पाता लोक प्रियता, अचल जन विश्वास ।
उठाना पड़ता न उसको, कभी दृढ़ इष्वास[16] ॥53॥

1 उत्पन्न करने वाली	2 शान्ति देने वाला	3 निद्रा रहित	4 थकावट 5 रमणीय, सुन्दर
6 नारी	7 बैर युक्त	8 छल	9 क्रूर उपायों से प्राप्त
10 लक्ष्मी	11 दूर करना	12 परम विश्वास	13 पालन
14 विवाहित	15 भंग, उपद्रव	16 धनुष	

मात्र निर्णय घोषणा का, बन चुकी आस्थान[1] ।
यदि सभा तो नीति करती, वहां से प्रस्थान ॥
जहां सचिवेतर[2] प्रशासन, सभा से अन्यत्र ।
मात्र रह जाता सुभूषण, वहां आसन[3] छत्र ॥54॥

भले संबंधी तुम्हारा, पर विदेशी तत्व ।
भरत भू प्रति उसे होगा, क्या भला अपनत्व ॥
पराभव भयजनितपरिणय, कहां शंकर[4] तात ।
कभी होता सालता है, विजित को दिन-रात ॥55॥

नर नहीं पासे निरे हैं, यह न कर अनुभूत ।
क्रूर आक्षिक[5] खेलता रहता नवल नय द्यूत ॥
व्यसन[6] बन सकते सुदुस्सह, मात्र अति विश्वस्त ।
प्रिजनों प्रति भी न नृप हो, पूर्णत: आश्वस्त ॥56॥

शांत नर का चिरदमित जब, फूटता है रोष ।
चिर प्रताड़ित अबल का भी, फूटता आक्रोश ॥
सर्वग्रासी तब हुतासन[7], प्रकट होता घोर ।
नही तब अनुमेय[8] होता, विकट क्षय का छोर ॥57॥

अरणि[9] ही समिधा न बन जाए रखो यह ध्यान ।
प्रदाहक होता मनुज को, धर्म का अपमान ॥
नहीं चंदन में शमी में, तनिक करता भेद ।
नहीं दावानल मनाता, वनौषधि क्षति खेद ॥58॥

नहीं उद्धतता बनाती, किसी को प्रिय पात्र ।
अल्पजीवीसिद्धिसविता[10], है सदा छल मात्र ॥
नहीं जनमत क्रेय[11] चाहे, कोष कर दो रिक्त ।
नहीं जीवन बदल सकती, एक निषशि मधुसिक्त ॥59॥

अनयपथचारीविभव[12] परिभव[13] न सकता टाल ।
यही है अनुभव हमारा, मात्र ऋत[14] है ढाल ॥
अभी भी संभव निवारण, विपद का है तात ।
रिपु न पांडव आप्तखांडव[15], सुनो मेरी बात ॥60॥

1 स्थान	2 सचिव से भिन्न	3 सिंहासन	4 कल्याणकारी	5 जुआरी
6 हानि, आपदा	7 अग्नि	8 अनुमान लगाने योग्य		
9 लकड़ी जिससे यज्ञ के लिए उग्नि उत्पन्न की जाती है		10 उत्पन्न करने वाला		
		11 क्रय किया जा सकने वाला		12 वैभव
13 पराजय	14 सत्य	15 खाण्डवप्रस्थ प्राप्त करने वाली		

देखते द्वेषण[1] सरूचि[2] यह, बंधुजन विद्वेष ।
क्षीणवैभव विगतबल कुरू, आषु[3] हों निःशेष ॥
नहीं कुछ कुरूराजप्रति वर्धित हुआ अनुराग ।
साथ साधित स्वार्थ देते, ये सकल अधिराज ॥61॥

पराभव गंधर्व कृत क्यों, भूलते वह आप ।
सवसु[4] कुरू का प्रकट वन में, सार[5] का परिमाप ॥
किये मोचित तव तनय यह, है पृथाजसुनीति ।
क्यों रहे सहते उन्हीं के, प्रति महा दुर्नीति ॥62॥

गुरू प्रणोदित[6] तूर्ण कुरूकृत, द्रुपद का आस्कंद[7] ॥
प्रथम लगता था कि कुरू यश का बना निष्यंद[8] ॥
यदि न पांडव कृत पराजय, झेलता पांचाल ।
क्या न झुकता सर्वदा को, नमितरिपु[9] कुरूभाल ॥63॥

हुए उद्धारक तनय के, किया यश विस्तार ।
उन्हीं के प्रति वारणावत, का घृणित व्यवहार ॥
किया जो तव पुत्र ने थी, शकुनि प्रेरित नीति ।
आज भी जनती जुगुप्सा[10], रोष विस्मय भीति ॥64॥

यदि सबलता आप धारें, हैं पितामह छत्र ।
द्रोण का दृढ़तर समर्थन, मिलेगा सर्वत्र ॥
बचेगा आधार बल का, मात्र तब वह कर्ण ।
भीष्मद्रोणप्रताप पुरत:[11], हो हताष: विवर्ण ॥65॥

है अभी इतना अनिश्चय, क्यों कि सहमति मान ।
आपकी युवराज कृति[12] में, वीर ये मतिमान ॥
मुखर हो पभविष्णु करते, ये न तीव्र विरोध ।
राजनिष्ठा निगड बनती, आपका उपरोध[13] ॥66॥

हैं सुसक्षम आप कर में, धारते नृप दण्ड ।
मृदु रहो मत चंद्रवंशज, बनो अघप्रति चण्ड ॥
मात्र शीश अलंकरणवत, है नहीं उष्णीष ।
ईषिता[14] अपनेय[15] है पर, मान्य रहते ईश ॥67॥

1 शत्रु	2 रूचि पूर्वक, ध्यान से	3 शीघ्र	4 कर्ण सहित
5 बल	6 प्रोत्साहित	7 आक्रमण	8 स्रोत
9 शत्रु जेता	10 घृणा	11 सामने	12 कर्म
13 स्वामित्व, सत्ता	14 दूर करने योग्य	15 स्वामी राजा	

नहीं आयतसूत्रता[1] सुविचारिता[2] पर्याय ।
बहु विकल्पान्वेषिणी है, बुद्धि गत[3] व्यवसाय ॥
मंत्रणा हो दीर्घ पर द्रुत, कार्य हो निर्णीत ।
सुगोपितमंत्रार्थलब्धा[4], यति नृपति की जीत ॥68॥

राजगुरू से नृपति को बस, धर्म है पृष्टव्य[5] ।
दण्ड में अधिकरणिकाधृत[6], मति सदा दृष्टव्य ॥
राजनय बस सचिव से बल, बलाधिप[7] से जान ।
नृपति का कर्तव्य है निज, कार्य का संधान ॥69॥

भूमिकाएं हैं सुनिश्चित, है कुमिश्रण हेय ।
राजनय ज्ञाता बनाता, जिन्हें राज्यविधेय ॥
बलाधिप विपदार्त रिपु को ,जब बताता जेय ॥
नहीं उसमें देखता है ,धर्म गुरू कुछ श्रेय ।70॥

हैं मुनिज[8] हम आप यह विस्मृत करो मत तथ्य ।
अत: है स्वीकारना जो, आत्म को हो पथ्य ॥
यदि रहे ऋषि अंश भूतिद, नित प्रवर्धनशील ।
तो समुन्नति के लिए है, रिक्त यह नभनील ॥71॥

धर्म संस्थापन परम है, धर्म ही नृप हेतु ।
किंतु इसमें है सुसक्षम, वही जो ऋत केतु[9] ॥
धारता हो स्वयं भी हो, सुदृढ़तर धर्मस्थ ।
इतररूजहरणार्थ[10] सक्षम, जो स्वयं हो स्वस्थ ॥72॥

सरसी छंद

कर लो संधि[11] पाडुंपुत्रों से, अब भी कुरूपति आप ।
अवसर दो न अराति हर्ष को, दूर दुरित[12] अभिशाप ॥
तव निर्णय पर निर्भर आयति[13], कुरू जनपद की प्रज्ञ ।
मूढ़ सुयोधन वारणीय है, संकट से अनभिज्ञ ॥73॥

मात्र आपमें पूज्य भाव से, सहे उन्होंने कष्ट ।
प्रण की हुई व्यतीत अवधि अब, करो भाग्य मत रूष्ट ॥
आप ईश हैं दे दो सत्वर, उनका अधिकृत भाग ।
शांति और सुख करो सुनिश्चित, फैले कीर्ति पराग ॥74॥

1 टालना, देर लगाना	2 भली प्रकार सोच विचार कर	3 निर्णय न कर पाने वाली
4 भली प्रकार रक्षित छिपाया गया		5 पूछने योग्य
6 न्यायाधीश	7 सेनापति	8 (व्यास मुनि से उत्पन्न
9 पताका, ध्वज	10 दूर करने में सक्षम	11 शत्रु
12 पाप, कष्ट, आपदा	13 भविष्य	

अभिमानी दुर्योधन छलरत, सौबल[1] रहा सदैव ।
दु:शासन है मूढ त्रयी[2] यह, लायेगी दुर्दैव ॥
मिला इन्हें सन्मित्र कर्ण जो, यद्यपि अपराजेय ।
नहीं कुमार्ग निवारण सक्षम, कुरू कृतज्ञ राधेय ॥75॥

उन पर सौंप भार शासन का, आप चाहते भूति ।
मरूजल की इस राजसौध[3] में, करते हैं अनुभूति ॥
वन में जन्में पिताहीन थे, जब ये पांडव बाल ।
इनको पोषित रक्षित शिक्षित, तुमने किया संभाल ॥76॥

सर्वगुणाकर[4] नीतिविशारद, धर्मज[5] है धर्मज्ञ ।
शीलसुधाकर[6] आज्ञाकारी, विनयी श्रुति मर्मज्ञ ॥
अयुतनागबल[7] भीम विक्रमी, दिव्यायुध कौन्तेय ।
कैसे समता त्याग आपने, माना उनको हेय ॥77॥

वे तो रखते सदा आपमें, पितृ तुल्य ही भाव ।
वीर वृती धर्मज्ञ वचन के, पालक शांत स्वभाव ॥
ज्ञान और समता ही होते, नृपति न्याय के प्राण ।
जिससे होती प्रकृति[8] सुरक्षित, पाती भय से त्राण ॥78॥

एक मात्र सुत मोह छोड़कर, लिया सुधन्वा[9] पक्ष ।
दैत्यराजवत[10] करो न्याय बनकर, धर्मआश्रयदक्ष ॥
मांग लिये अंगिरा तनय से, फिर निज सुत के प्राण ।
बचा विरोचन हुए राजनय, में प्रहलाद प्रमाण ॥79॥

एकाकी[11] सहता न महातरू, भी झंझा की शक्ति ।
संहति परम अधृष्य[12] नाश का, कारण सदा विभक्ति[13] ॥
करो शांतिहित यत्न रहें मिल, कौरव पांडव जात ॥
वारिधिजा[14] हों स्वयं विराजित, विकसे शमजलजात[15] ॥80॥

हैं कौरव अप्रवेश्य वनोपम, सिंहोपम[16] कौन्तेय ।
रहें परस्पर होकर रक्षित, नरपति यही विधेय[17] ॥
क्या कांतार[18] बिना हरि होते, हरि[19] के बिना अरण्य[20] ।
होकर ही अधृष्य बन सकता, कुरू अवनीश शरण्य ॥81॥

1 शकुनि	2 तीन का समूह	3 राजमहल	4 सभी गुणों की खान
5 युधिष्ठिर	6 शील के चन्द्रमा	7 दस हजार हाथियों के बल वाले	
8 प्रजा	9 अंगिरा ऋषि का पुत्र	10 प्रहलाद	11 एकता, ठोस
12 न प्रवेश योग्य	13 फूट	14 लक्ष्मी	15 शान्ति का कमल
16 सिंह के समान	17 करने योग्य	18 वन	19 सिंह
20 शरण देने योग्य			